अर्जुन उवाच।
अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः।
अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति।।३७।।

अर्जुनः उवाच=अर्जुन ने कहा; **अयतिः**=शिथिल प्रयत्न वाला असफल योगी; **श्रद्धया**=श्रद्धापूर्वक; **उपेतः**=संलग्न; **योगात्**=योग से; **चलित**=विचलित; **मानसः**=मन वाला; **अप्राप्य**=प्राप्त न होकर; **योगसंसिद्धिम्**=योग के परमोच्च लक्ष्य को; **काम्**=किस; **गतिम्**=गति को; **कृष्ण**=हे कृष्ण; **गच्छति**=प्राप्त होता है।

अनुवाद

अर्जुन ने कहा, हे माधव! उस शिथिल यत्न वाले श्रद्धावान् योगी की क्या गति होती है, जो प्रारम्भ में तो स्वरूप-साक्षात्कार का मार्ग ग्रहण करता है, पर फिर विषयों में चित्त की आसक्ति के कारण योग से विचलित हो जाता है और योग की कृतार्थता को प्राप्त नहीं हो पाता।।३७।।

तात्पर्य

भगवद्गीता में स्वरूप-साक्षात्कार रूप योगपथ का सर्वांग प्रतिपादन है। स्वरूप-साक्षात्कार का मूल सिद्धान्त यह है कि जीवात्मा प्राकृत देह नहीं है, अपितु देह से भिन्न है और उसका नित्य सुख सच्चिदानन्दमय जीवन में है। यह सच्चिदानन्द देह और चित्त, दोनों से परे है। स्वरूप-साक्षात्कार के लिए ज्ञान, अष्टांगयोग अथवा भक्तियोग के पथ का अनुगमन किया जाता है। इनमें से प्रत्येक पद्धति में साधक को जीव के स्वरूप का, श्रीभगवान् से अपने सम्बन्ध का और उन क्रियाओं का बोध होना आवश्यक है जिनसे वह श्रीभगवान् से अपने सम्बन्ध को फिर से स्थापित कर परम प्रयोजनीय कृष्णप्रेम (कृष्णभावना) को प्राप्त कर सकता है। उपरोक्त तीनों मार्गों में से किसी एक पर चलने से यथासमय परम लक्ष्य की प्राप्ति निश्चित है। द्वितीय अध्याय में श्रीभगवान् ने घोषणा की है कि परमार्थ के मार्ग में किया गया अल्प साधन भी महाभय से बचा लेता है। इन तीनों पथों में भक्तियोग का पथ इस युग के लिये विशेष रूप से उपयुक्त है, क्योंकि यह भगवत्प्राप्ति का सब से सीधा मार्ग है। इस सम्बन्ध में पूर्ण आश्वस्त होने के लिए अर्जुन श्रीकृष्ण से अपने पूर्वकथित वाक्य की सम्पुष्टि करने का अनुरोध कर रहा है। इस युग में स्वरूप-साक्षात्कार के मार्ग को गम्भीरतापूर्वक अंगीकार करने वाले के लिए भी ज्ञान और अष्टांगयोग की पद्धतियाँ अत्यन्त कठिन हैं। अजस्र प्रयास करने पर भी अनेक कारणों से इनका साधक असफल रह सकता है। सबसे पहले तो सम्भव है, पथ का ठीक-ठीक अनुगमन ही न हो। परमार्थ के पथ पर बढ़ना माया पर आक्रमण करने जैसा है। जब भी कोई जीव मायाबन्धन से मुक्त होने का प्रयत्न करता है तो माया नाना प्रकार के प्रलोभन देकर उसे परास्त करने का भरपूर प्रयत्न करती है। बद्धजीव माया के तीनों गुणों से पहले ही मोहित है। इस कारण परमार्थ साधना करते हुए फिर मोहित हो जाने की पूरी